अपने पाठकों से

'बंगाल का काल' का तीसरा संस्करण छपने जा रहा है। इस पुस्तक की कुछ ऐसी किस्मत रही है कि इसका हर संस्करण एक नए प्रकाशक के यहाँ से निकला है। मैं आशा करता हूँ कि इसका नवीन संस्करण पिछले दो संस्करणों से अधिक नयनाभिराम होगा।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि बंगाल का काल तो १९४३ में पड़ा था, और तभी यह रचना लिखी गई थी, पर पन्द्रह वर्ष बाद भी यह रचना पढ़ी जाती है और इसकी माँग बनी हुई है। सामयिक रचनाओं के संबंध में प्रायः देखा जाता है कि समय पर तो उनकी बड़ी वाहवाही होती है, पर कालांतर में घटनाओं के धूमिल पड़ जाने पर उनसे संबद्ध रचनाओं का मूल्य भी घट जाता है। कारण यह होता है कि उनके प्रसिद्धि पाने में उनका आंतरिक गुण इतना सहायक नहीं होता जितना बाह्य परिस्थितियाँ, जो कुछ समय के लिए अपने आंदोलन से उन्हें ऊपर उठा देती या आगे बढ़ा देती हैं। १९३० के सत्याग्रह-आंदोलन के दिनों में जलूसों के साथ गाने के लिए मैंने कई गीत लिखे थे जिनमें से 'सिर जाए तो जाए, पर हिंद आज़ादी पाए' बहुत प्रचलित हो गया था। एक बार मुझे याद है महात्मा गांधी की उपस्थिति में, पुरुषोत्तमदास पार्क, प्रयाग में यह गीत श्रीमती श्यामकुमारी नेहरू (अब 'ख़ान') ने गाया था और तीस हज़ार कंठों ने इसे कड़ी-कड़ी दुहराया था। पर थोड़े दिनों बाद लोग उस गीत को भूल गए। साफ़ है कि गीत में कोई अपना कवित्व, अपनी विदग्धता नहीं थी, केवल आंदोलन की गर्मी ने उसे ऊपर उछाल दिया

बंगाल का काल

पड़ गया बगाले मे काल,
भरी कगालो से धरती,
भरी ककालो से धरती ।

दीनता ले असख्य अवतार,
पेट खला,
हाथ पसार,
पाँच उँगलियाँ बाँध
मुँह तक ला,
भीतर घुसी हुई आँखो से
आँसू ढार,

था, और आदोलन के ठडे पडते ही वह नीचे बैठ गया । आदर्श तो यह होना चाहिए कि कवि चाहे जीवन के शाश्वत विषयो पर लिखे चाहे सामयिक पर, लेकिन उसकी रचना मे कोई ऐसा आतरिक गुण भी हो जो बाहरी सदर्भो से उसे अलग कर देने पर भी उसे कवित्व की कसौटी पर खरा उतारे । मुझे नही मालूम कि 'बगाल का काल' मे यह गुण किस प्रकार निहित है, पर जब बगाल के अकाल के तीन वर्ष बाद प्रकाशित होने पर भी इसका स्वागत हुआ, और इसके भी दो वर्ष बाद इसका अनुवाद बगला मे प्रकाशित हुआ, और दो और मूल सस्करणो की आवश्यकता पडी तो यह सहज ही मान लिया जाएगा कि इस रचना मे कोई ऐसा गुण भी है जो तात्कालिक परिस्थितियो से परे है ।

'आकुल अतर' लिखते हुए और विशेषकर दूसरे विश्व महायुद्ध के समय मेरी उद्भावना, जो उससे पूर्व प्राय अतर्मुखी ही रहा करती थी, कभी-कभी बहिर्मुखी भी हो जाया करती थी। उन दिनो मैने कुछ कविताएँ लिखी थी जो 'विकल विश्व से' ज्ञापित करके पत्रो मे प्रकाशित हुई थी । इसी शीर्षक मे उन्हे पुस्तक-रूप मे छपाने का अग्रिम विज्ञापन भी कर दिया गया था । पर किसी कारण मै उनको सग्रह का रूप न दे सका, गो मैने यत्र-तत्र देखा है, मेरी रचनाओ की सूची मे 'विकल विश्व' का नाम भी दिया गया है । इस नाम से वास्तव मे मेरी कोई किताब कभी प्रकाशित नही हुई । उन सब रचनाओ को मैने 'धार के इधर-उधर' शीर्षक से गत वर्ष ही पुस्तक-रूप मे प्रकाशित कराया है ।

बगाल का अकाल बहिर्मुखी उद्भावना का ही क्षेत्र था । सन् १९४३ के प्रारभ मे बगाल के अकाल का रोमाचकारी विवरण समाचारपत्रो मे आने लगा । स्वाभाविक था कि इस विषय पर भाव-प्रवण कवियो की लेखनी उठती । इस विषय पर कवियो की प्रतिक्रिया दो प्रकार की हो सकती थी । एक तो बगाल के दुर्दिन का वर्णन करना और उसके प्रति देश

अन्न हो गया गायब सहसा
पेरिस की हाटो-वाटो से,
लगे तडपने लोग भूख से ।

सुनो हाल अब ज़रा उधर का ।
राजा-रानी
तज रजधानी,
ले रक्षक, सेना, सेनानी,
चले गए थे वरसाई को
ग्यारह मील दूर पेरिस से ।

एक मनोहर वनस्थली मे
वरसाई गर्विता बसी थी,
ऋद्धि-सिद्धि, सपत्ति, विभव से,
वैभव से सब भाँति लसी थी ।
गुंबद, कलश, धरहरे वाले
नभ-चुम्वी प्रासाद खडे थे,
जिनके चारो ओर सुशोभित

को सहानुभूति जगाना। प्राय कवियो ने यही किया, क्योंकि १९४२ के उग्र दमन ने लेखकों की निबों की नोक तोड दी थी। मैंने बगाल के विषय मे जो जाना, सुना, पढा था उससे उसे दया का पात्र समझना मेरे लिए अपराध करने के समान था। मेरी प्रतिक्रिया दूसरी प्रकार की हुई। बगाल की दयनीय दशा पर मैं इतना विचलित नहीं हुआ जितना उसकी नपुसक सहिष्णुता पर जिससे उसने मानवी स्वार्थ-प्रेरित इस दानवी ईति-भीति को मप्ट मारकर झेल लिया। बगाल मे अकाल के कोई भी प्राकृतिक कारण उपस्थित नही हुए थे, फिर भी जैसा कि उन दिनो पत्रो मे लिखा गया था, उस 'मैन मेड फ़ेमीन' से बगाल के लगभग आधे करोड नर-नारी और निरीह बच्चे महाकाल के गाल मे समा गए। बगाल के कवियो में किस प्रकार की प्रतिक्रिया हुई इसे मैं विस्तार से नही बता सकता। अपने बगाली मित्रो से जो मैंने सुना उससे तो मेरी धारणा यही हुई कि बगाल की जनता के समान बगाल की सरस्वती भी इस विपदा को मौन रहकर ही ओढ गई। मेरे एक मित्र ने मेरी रचना लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर डी०पी० मुकर्जी को सुनाई तो उन्होने मुझे एक पत्र लिखा, जिसका एक वाक्य मुझे याद है—'बगाल ने इस अकाल का अनुभव अपनी हड्डियो मे किया, रक्त और नसों में किया और अपनी समस्त शक्ति लगाकर अपना मुंह बद रक्खा।'

मैं जानता था कि जो मैं लिखूंगा, न वह छप सकेगा, न वह बगाल तक पहुंच सकेगा, और न उसका कोई तात्कालिक प्रभाव होगा, पर मैं अपनी व्यग्रता को वाणी देने को विवश हो गया। यह पूरी कविता, जो लगभग १००० पक्तियो मे है क़रीब ३६ घटो के अनवरत परिश्रम से लिखी गई। सुबह बैठा तो न नाश्ते के लिए उठा, न दिन के खाने के लिए, न चाय के लिए, न रात के खाने के लिए। बारह बजे रात को दिमाग़ चक्कर करने लगा। मैं थोडी देर को लेट गया पर नीद नहीं आ रही

तब वरसाई के शातू[1] मे
झाड और फ़ानूस सुसज्जित
सबसे बडे हॉल के अंदर
भोज दे रहे थे नृप-दंपति,
होने को शरीक जिसमे थे
सब अमीर-उमरा आमन्त्रित ।

जब पेरिस भूखो मरता था,
पत्नी अपने पति के आगे
प्रेम और यौवन का सारा
स्वप्न तथा रोमांस भूलकर
हाथ पसारे यह कहती थी.
'प्यारे भूख लगी है, रोटी,'
तब वरसाई के शातू मे
हँसी-दिल्लगी और मनोरंजक
गप्पो के फौवारो मे,

१- फ़ांसीसी शब्द है, अर्थ है महल ।

थी, सोचा—इससे तो अच्छा है बैठकर काम ही कर डालूं। दूसरे दिन अपराह्न मे जाकर मैने रचना के नीचे अपने हस्ताक्षर किए।

लडकपन मे मुक्त छद लिखने का दुसाहस मैने जरूर किया था, पर १६२६ से '४२ तक का मेरा लिखा जो कुछ प्रकाशित हुआ था वह सब तुकात छदो मे था। 'मधुशाला' लिखने के समय से मुझे ऐसा लगता था कि मेरी भावनाए छदो मे ही उठती है, उसके पहले अवश्य मै जो कुछ सोचता या अनुभव करता था उसे छदो मे बाँधने का प्रयास करता था। यह भी एक रहस्य की बात है कि बगाल के अकाल के प्रति जब मै अपनी व्यग्रता और आवेश को वाणी देने लगा तो दस-बारह बरस की आदत और अभ्यास के बावजूद छदो की सारी कडिया तडककर टूट गईं। मै मुक्त छद मे लिख रहा था। विषय नया था, उद्भावना नई थी, दृष्टिकोण नया था। मुझे आश्चर्य नही हुआ कि मेरी अभिव्यजना ने एक नया बाना धारण किया। इस विषय पर प्राय कविताएँ छदबद्ध लिखी गईं। पहले मेरी धारणा थी कि शायद इसपर मुक्त छद मे मैने ही लिखा है। बाद को मुझे पता लगा कि श्री उदयशकर भट्ट ने भी मुक्त छद मे ही बगाल के अकाल पर लिखा था।

'काता और ले दौडे' की आदत मुझे कभी नही रही। मैने अपने प्रारभिक दिनो मे 'काव्य-अप्रकाशन' पर ही एक कविता लिख डाली थी। श्री प्रफुल्लचद ओझा 'मुक्त' से मेरा परिचय १६३२ मे हुआ। तब तक चार बडी कापियां मैने कविताओ से भर रखी थी। उनको आश्चर्य हुआ कि मैने उन्हे प्रकाशित क्यो नही किया। मने अपनी उपर्युक्त रचना दिखला दी। १६४२ मे भी मेरा लिखा बहुत कुछ अप्रकाशित था, आज भी बहुत कुछ है। कुछ ऐसी रचनाओ की चर्चा मैने 'हलाहल' की भूमिका मे की थी। मैने सोचा था 'बगाल का काल' को भी उसी गल्ले मे डाल देना पडेगा। फिर दमन-दक्ष हैलेट के सयुक्त प्रात मे किसकी

(हुई नाम से निश्चित किस्मत)
राज कुंवर को लिए गोद मे,
भरी गोद मे,
किए लुई को पीछे-पीछे
घूम रही थी मेहमानो मे,
जैसे हो चदा तारो की भरी सभा मे ।

जिधर दृष्टि जाती थी उसकी,
खड़ी कतारें सामतो की
खड्ग हवा मे लहराती थी,
झहराती थी,
झनकाती थी,
चमकाती थी,
और उठा मदिरा के प्याले,
राज स्वास्थ्य के लिए उन्हें पी,
राजभक्ति की सौगधें खाती थी ।

जब पेरिस भूखो मरता था

हिम्मत थी कि इस प्रकार की रचना को छापता।

उन दिनो स्वर्गीय पडित अमरनाथ झा प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चैसेलर थे, मैं अग्रेजी विभाग मे अध्यापक था। झा साहब अपने घर पर कभी-कभी कवि-गोष्ठी किया करते थे, जिसमे स्थानीय कविगण भाग लेते थे, यदा-कदा बाहर के कवि भी पधारते थे। तभी उनके यहाँ एक गोष्ठी का आयोजन हुआ। मैंने उसमे बगाल के अकाल पर लिखी अपनी मुक्त छद की रचना सुनाई। यह इसका सर्वप्रथम पाठ था। झा साहब गभीर, श्रोता सकते मे, कवियो के लिए मुझसे ऐसी रचना अप्रत्याशित। मैंने दर-दीवारो को अपनी रचना सुनाई। हैलेटी आतक लोगो पर इस कदर छाया हुआ था कि शायद वे सोचते थे कि इसपर 'वाह' करने मे भी वे जुर्म करेंगे और क़ानून की गिरफ्त मे आ जाएँगे। गोष्ठी की समाप्ति पर झा साहब ने मुझे अलग बुलाकर कहा, 'मैं तुमसे बहुत नाराज हूँ। ऐसी क्रातिकारी कविता तुमने क्यो सुनाई? तुम्हे नही मालूम कि इतने लोगो मे कौन सरकारी जासूस है। शाम तक तुम्हारे घर की तलाशी हो सकती है। घर पहुँचते ही इस कविता से सबद्ध सारे कागजो को या तो जला दो या कही घर से दूर हटा दो।'

'गुनाह बे लज्जत' मे मुझे विश्वास नही। जलाने के लिए तो मेरे दिल ने गवाही न दी, पर मैंने कागजो को कही हटा-छिपा दिया। पुलिस तो तलाशी के लिए घर पर नही आई, पर कई पूर्व-अपरिचित व्यक्ति काव्य के अनन्य प्रेमी बन, उस कविता को नक़ल कर लेने के लिए आए। एक-दो देवियाँ भी आई जिनसे मेरी पत्नी निपटी।

कुछ महीनो के बाद श्रीमती महादेवी वर्मा ने बगाल के अकाल पर लिखी हिंदी कविताओ का एक सकलन प्रकाशित करने और उसकी बिक्री से अकाल-पीडितो को सहायता पहुँचाने की योजना बनाई सहायता उससे खास क्या होनी थी, हिंदी कवियो की ओर से बगाल के प्रति एक

होटल से, काफीखानो से,
दूर-दूर से, पास-पास से
एक उठी आवाज़ और वह
गूँज गई संपूर्ण नगर मे—

एलो[1]-एलो, एलो-एलो !
चलो चले, चले चलो !
घर छोड़ो, बाहर निकलो !
एलो-एलो !
चलो-चलो !
एलो-एलो !
मिलो-मिलो !
एलो-एलो !
सब मिलकरके साथ चलो !
एलो-एलो !
साथ चलो औ' साथ बढो !

---

१ Allons फ्रांसीसी शब्द है, अर्थ है 'आओ चलें'

सहानुभूति का प्रतीक आगे रखना था। उन्होंने मेरा भी सहयोग चाहा। पहले तो मैने अपनी कठिनाई उनके सामने रख दी, पर जब उन्होने दुबारा अनुरोध किया तो मैंने झा साहब की अनुमति लेकर कुछ ऐसे अश प्रकाशित करने की सहमति दे दी जिनमे प्राय बगाल का वर्णन था, और अकाल का प्रासगिक सकेत भर था। कविता की सार्थकता तो उसकी पूर्णता मे थी। उससे मुझे खुशी नही हुई। मेरी कुछ पक्तियाँ वहाँ जरूर थी, पर मैं उनमे न था।

बहरहाल मैंने बगाल के अकाल पर कोई लबी कविता लिखी है, इसका पता लोगो को पहले-पहल 'बगदर्शन' से लगा। शायद यही नाम था उस सकलन का। उस सकलन मे मुक्त-छद मे लिखी किसी और की कविता नही थी, मेरी भी मुक्त छद मे लिखी यह पहली ही कविता थी जो लोगो के सामने आई, और इससे लोगो का ध्यान विशेष रूप से उसकी ओर गया। इस विषय पर लिखना भी मेरे लिए कुछ अजीब-सा समझा जाता था।

मेरे कुछ प्रेमी अवश्य उसे पूर्ण प्रकाशित देखने को उत्सुक थे, पर जैसे-जैसे समय बीतता गया, बगाल के अकाल की दु खद घटना को लोग भूलने लगे और साथ ही उसपर लिखी कविताओं को भी। प्रसग से दूर चले जाने पर, मेरे मन से भी इसे प्रकाशित करने की बात उतर गई, पर १९४५ के अत मे या ४६ के प्रारभ मे एक ऐसी घटना हुई जिससे मैने उसे, देरी से ही सही, प्रकाशित करने का निर्णय किया।

उन दिनो सयुक्त प्रात मे भी गल्ले की कमी की सनसनीखेज खबरे फैल चुकी थी। दूध का जला मट्ठे को फूंककर पीता है। लोग बगाल की दशा देख चुके थे। कही लापरवाही करने से हम भी न ऐसे सकट मे पड जाए, इससे लोगो ने 'कठलजगग बावेला' मचाने का निश्चय किया। काग्रेस की ओर से सरकार की गल्ल-नीति के विरुद्ध प्रदर्शन करने के

इस नारे को अपना करके
धर्म युद्ध के लिए चल पड़ो।
शपथ अन्न की लेकर कहता,
जो मनुष्य है भूखा रहता
वह पापी है,
जो कि भूख की ज्वाला सहता
वह पापी है,
और भूख से जो मरता है
महा पातकी,
उसकी छाया को छूने से
नरक डरेगा।

ऋषियों की यह
दिशि-दिशि व्यापी,
युग-युग थापी,
अमर घोषणा भूल गए तुम ?—
अन्न प्राण है,
अन्न यज्ञ है,

लिए एक जलूस निकाला गया। उस दिन प्रकाशित करने के लिए दैनिक 'भारत' के सपादक ने मुझसे 'वगाल का काल' का कुछ अश मांगा। कविता की एक पक्ति 'अपनी रोटी अपना राज', शीघ्र ही जनता ने नारे के रूप मे स्वीकार कर ली और वह सहस्रो कठो से दुहराई गई।

साथ ही जेलो से छूटे हुए हमारे नेता, विशेषकर पडित जवाहरलाल नेहरू, वगाल के अकाल की प्रतिक्रिया पर आलोचना करते हुए उसी स्वर मे वोले जिसमे मैने अपना 'वगाल का काल' लिखा था—मुझे ताज्जुव है, लोगो ने अनाज की दूकाने क्यो नही लूट ली, सरकार के खिलाफ क्यो नही उठ खडे हुए। कुछ इसी तरह की वाते। वात यह है कि नेहरू जी अपने सच्चे रूप मे विद्रोही है और जो लोग अपने सिद्धातो के लिए, चाहे वे किसी अश मे गलत ही क्यो न हो, मरने-मारने को उतारू हो जाते है, उनकी वे इज्जत करते है, क्योकि वे ऐसे लोगो मे कुछ दम देखते है, उन्हें सवसे अधिक घृणा है कमजोरी से, दीनता से, आत्म-दयनीयता (सेल्फ पिटी) से।

इन वातो से मुझे लगा कि मेरी कविता अभी वासी नही हुई। वगाल के अकाल को उपकरण वना, आखिरकार, मैने जनता के जिस अधिकार, जिस चेतना, जिस शक्ति का उद्‌वोधन किया है उससे सजग होने की आवश्यकता वगाल के अकाल के साथ ही तो समाप्त नही हो गई। लोग पुस्तक के लिए उत्सुक थे, आर्डिनेंसो के वधन ढीले हो चले थे, मैंने १९४६ मे उसे प्रकाशित करा दिया।

मेरे जिन मित्रो ने इसे वगाल के अकाल के समय सुना था, उनसे कइयो की राय थी कि मै इसे वँगला मे अनुवाद कराके वगाल के पत्रो मे भेजूं। कुछ ने वँगला जाननेवाले कुछ हिन्दी लेखको के नाम भी सुझाए थे। पर अनुवादो के वारे मे मेरा एक सिद्धात है, और मैं समझता हूँ यही ठीक सिद्धात है। अनुवाद के लिए मैं अनुमति तभी देना चाहता हूँ जब जिस

वरसाइयाँ वहुत है अब भी,
शायद क्रूर-कठिन पहले से,
बरसाएँगी तुमपर गोली
और तुम्हे मरना भी होगा !
लेकिन इतना निश्चित जानो
मरकर ही तुम जी पाओगे,
जीने से तुम मर जाओगे ।

अपने अधिकारो पर लडते
अगर मरे तुम, खून तुम्हारा—
कवि की कलमो से लिख देगा
अमर कथा वह वलिदानो की
जिसको पढ़कर, जिसको सुनकर
मुरदो मे जीवन आएगा,
ज़िदो मे यौवन आएगा ।

किंतु मरे यदि मानवता खो
—और सुना इस तरह लाखहा

भाषा मे अनुवादक पुस्तक का अनुवाद करना चाहता है वह उसकी अपनी भाषा हो और वह अपनी इच्छा से अनुवाद करना चाहे। 'मधुशाला' के अंग्रेज़ी अनुवाद की अनुमति मैंने तब दी जब एक अंग्रेज महिला ने स्वयमेव इसके लिए इच्छा प्रकट की। यही कारण है कि वह अनुवाद अच्छा हुआ है। अनुवादक का रचनानुराग अनुवाद की सफलता की सबसे पहली आवश्यकता है। अपनी भाषा पर अधिकार, दूसरी। श्री भूपेन्द्रनाथ दास को 'बगाल का काल' के बँगला अनुवाद करने की अनुमति मैंने इसलिए दी कि वे स्वय बगाली है और उन्होने स्वेच्छया इस रचना पर मुग्ध होकर इसका अनुवाद करना चाहा। अनुवाद बहुत सफल हुआ है। मैं निर्णय देने का अधिकारी नही, पर स्वर्गीय प्रोफेसर विनय सरकार ने उसकी भूमिका में लिखा था, 'अनुवाद अनुवाद नही मालूम होता।
मानो स्वय बच्चन ने ही बँगला मे लिखा है। या भूपेन्द्रदास ने बच्चन के मस्तिष्क और हृदय पर अधिकार कर लिया है।' किसी भी अनुवाद की इससे अधिक प्रशसा नही हो सकती। आजकल एक भाषा से दूसरी भाषा मे अनुवाद बहुत कुछ राजनीतिक कारणो से किया-कराया जा रहा है। साहित्य की दृष्टि से यह अस्वस्थ है और उच्चकोटि का नही हो सकता। प्रसगवश अंग्रेज़ी का थोडा-बहुत ज्ञान रखनेवाले बहुत-से भारतीय अपने-अपने साहित्य का अंग्रेज़ी मे अनुवाद कर-करा रहे हैं, यह रोग हिंदी मे भी आ गया है। अपने साहित्य को विकृत रूप मे उपस्थित करने का इससे बढकर और कौन तरीका होगा! आज तक किसी अंगेज ने, और अंग्रेज़ो मे हिंदी के जाननेवाले अच्छे विद्वान् हुए है, यह दुस्साहस नही किया कि अपने शेक्सपियर को या किसी भी बडे लेखक को हिंदी मे अनुवाद कर आपके सामने उपस्थित करे। हाँ, अपने हिंदी ज्ञान का उपयोग उन्होने यह ज़रूर किया है कि हिंदी से अंग्रेज़ी मे अनुवाद कर लिया है। आप अंग्रेज़ी जानते हैं तो कुछ अंग्रेज़ी को हिंदी मे अनूदित कर लें। हिंदी

यह चदा तो थोडा ही है,
सिहानियाँ पद्मपत की सब,
खेतानो को औ' बिड़ला की,
साराभाई, डालमिया की,
वालचद की, हुकुमचद की,
हिज़हाईनेस आगा खाँ की,
औ' निज़ाम की,
जो कि सुना जाता है सबसे
धनी व्यक्ति हैं इस दुनिया के,
और चचा इन सबके कारूँ
और लकडदादा कुबेर की
सारी दौलत भी मिल जाए,
तो हे बग देश के भूखो,
नही बचा तुमको सकती है।

तुम्हे जानना है मनुष्य तुम,
और नही कीचड के कीडे
जो आहार तथा मैथुन कर

से अंग्रेजी मे अनूदित करने का काम अंग्रेज का है। हिन्दी से बंगला में अनूदित करने का काम बंगाली का है। जिस रचना के लिए जिसकी आस्था हो उनका वह अनुवाद करे। यही उत्तर मैंने उन लोगो को दिया था जिन्होंने यह चाहा था कि 'बंगाल का काल' बंगाली मे प्रस्तुत किया जाए।

प्रथम प्रकाशन को लगभग बारह वर्ष हो गए। पत्र-पत्रिकाओं ने उसके विषय मे क्या रायें दी थीं, इसकी केवल धुंधली-सी स्मृति मुझे है। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की आलोचना को न मैं महत्ता दे पाता हूँ और न उन्हें निर्णय एवं विवेकपूर्ण पाने की प्रत्याशा करता हूँ क्योंकि अधिकतर उनके लेखक होते हैं अर्धशिक्षित प्रूफरीडर या फिर शिखंडी जो अपनी अज्ञानता और नगण्यता अथवा व्यक्तिगत ईर्ष्या और दलगत पक्षपात को छिपाने के लिए छद्म नामो की आड़ लेते हैं। जो अधिकारी हैं वे इसी दंभ से मौन रहते हैं कि उनके नोटिस लेने से ही कोई बड़ा हो जाएगा; और ऐसे संसार मे जहाँ हरएक दूसरे को गिराने मे लगा हुआ है वे ही विपरीत चाल क्यो चलें! ज्यादातर पत्रों की टेक यही थी कि जब अकाल समाप्त हो गया तब इसके प्रकाशन का क्या लाभ? 'का वर्षा जब कृषी सुखाने' आदि। कविता के आंतरिक गुण-दोषो की ओर शायद ही किसीने ध्यान दिया हो। 'मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त' की कहावत के अनुसार हिन्दी का समालोचक तो सुस्त है, पर हिन्दी के पाठक और श्रोता सजग हैं। पुस्तक पर्याप्त संख्या मे बिकी और बड़े-बड़े सम्मेलनों मे मैंने उसका पाठ किया और जनता ने तन्मयता के साथ सुना। मेरा अनुभव तो यही रहा है कि कविता के आंतरिक गुणो को समझने के लिए साधारण जनता के पास एक ऐसी सहज कसौटी होती है जो समालोचक बड़ा यत्न करने पर भी, अक्सर नही प्राप्त कर पाता। कविता शायद पूर्ण समर्पण मांगती है और समालोचक का बौद्धिक अहं उसे इस कार्य से रोकता है।

इस सबध मे मै अपने मित्र, तथा उस समय विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग के अपने सहयोगी श्री रवीन्द्रनाथ देव को भी नही भूल सकता। उन्होने मेरी पूरी कविता सुनी थी और उससे प्रेरित होकर उन्होने कविता मे प्रयुक्त प्रतीको—अजगर, श्वान, स्यार, ककाल, साकार भूख, चील, कौए आदि का सकेत देते हुए अपनी रग-रेखा की लयात्मक शैली मे एक चित्र बनाया था जिससे बगाल के अकाल की सपूर्ण भीषणता जैसे बरबस आँखो मे बँसती-सी प्रतीत होती थी। हगरी की प्रसिद्ध चित्रकार मदाम बालातोनी उस समय प्रयाग पधारी थी और उस चित्र को कुछ देर देखकर उन्होने अपनी आँखें बद कर ली थी—मै इसकी ओर अधिक देखने मे असमर्थ हूँ। देव ने यह चित्र कई बार अपनी चित्र-प्रदर्शनियो मे रक्खा और उसने दर्शको का विशेष ध्यान आकर्षित किया। काश कि 'बगाल का काल' के नए पाठक उस चित्र को देख सकते! जब इस पुस्तक का प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ तो उन्होने आवरण पृष्ठ के लिए भी एक चित्र बनाकर दिया था। बगाल की विभीषिका का जो एकाक्षी आकार उन्होने बनाया था वह सचमुच भयप्रद और ममभेदी था। शीर्षक के अक्षर ककाल-से बने लगते थे।

मेरे लिए सबसे अधिक सतोष एव सुख का विषय तब उपस्थित हुआ जब पुस्तक के प्रकाशन के दो वर्ष बाद एक पूर्व-अपरिचित बँगाली सज्जन ने मुझे सूचित किया कि वे 'बगाल का काल' का बँगला अनुवाद कर रहे है। समाप्त होने पर उन्होने उसे प्रकाशित करने की अनुमति चाही। मैने अपने लिए बिना किसी प्रकार का लेखकाश माँगे उन्हे, पुस्तक प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी। मैने बगालियो के प्रति अपनी एक उद्भावना अभिव्यक्त की थी, बँगला अनुवाद के द्वारा बगालियो के पास पहुँचकर वह प्रेषण बनी, यदि उसमे भावोद्बोधन की शक्ति रही होगी तो वह सहानुभूति (सह+अनुभूति) भी बनी होगी।

अपनी रचनाओ की विशिष्टता का इसे मैं कोई सबूत नही मानता, पर घटनावश, 'मधुशाला,' आधुनिक हिन्दी कविता की पहली पुस्तक थी जिसका अनुवाद अग्रेजी मे हुआ, और 'बगाल का काल' ऐसी ही पुस्तक, जिसका अनुवाद बँगला मे हुआ। जब मैंने यह लिखा था—

छप चुकीं मेरी किताबें पूरबी औ'
पच्छिमी दोनों तरह के अक्षरो में,
औ' सुने भी जा चुके हैं गीत मेरे
देस औ' परदेस दोनों के स्वरों में—

(आरती और अगारे)

तो यह घटना मेरे ध्यान मे थी। 'कालेर कवले बाँगला' की भूमिका मे विनय सरकार ने लिखा, "प्रथम तो यह पुस्तक हिंदी का अनुवाद है। दूसरे अनुवाद हिंदी कविता का है। दोनो बातो का मूल्य एक लाख रुपया है।"

'बगाल का काल' के बँगला अनुवाद से मैंने दो परिणाम निकाले, एक मुख्य और एक गौण। मुख्य यह कि हिन्दी की रचनाओ मे देश के अहिन्दीभाषियो की रुचि तभी होगी जब उनमे दूसरे प्रदेशो के जीवन की झाँकी हो। हिन्दी को राष्ट्रभाषा की अधिकारिणी बनने के लिए उसे अपना मानसिक सवेदन-क्षेत्र हिन्दीभाषी प्रदेश से आगे बढाकर राष्ट्रव्यापी बनाना पडेगा। जुलाई, १९५७ की भारतवाणी (धारवाड) मे श्री कर्कि की एक कविता की पक्ति दी—

'एल्लेलि कन्नडद कपु सूसलल्लल्लि करण चाचेव'

भावार्थ है, जहाँ कही से भी कन्नड की गध-ध्वनि आए, हम नाक-कान पसारेंगे।

अन्य भाषा-भाषी भी ऐसी ही भावना व्यक्त करना चाहेगे। हिन्दी को अगर सच्चे अर्थों मे राष्ट्रभाषा बनना है तो उसे भारत के अन्य

भाषा-प्रदेशो की गध-ध्वनि देनी होगी। श्री भूपेन्द्रनाथ दास ने अनुवाद की भूमिका मे लिखा था, "१९४३ की 'बगाल का काल' नामक पुस्तक कवि की अन्य कृतियो से बिलकुल भिन्न और स्वतन्त्र है। उसमे वह सब है जो बगालियो के समक्ष आदरणीय है। इसी कारण कवि के इस ग्रथ का बँगला अनुवाद करके बगाली सभ्य समाज को उनसे परिचित कराने की चेष्टा मैंने की है।"

अनुवाद करने मे शायद सरलता इस बात से भी हुई कि 'बगाल का काल' मुक्त छद मे है। छदबद्ध कविता का अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा मे करना बहुत कठिन है। यदि मुक्त छद का माध्यम समुचित रीति से विकसित एव परिष्कृत हो जाए तो भाषाओ के बीच काव्य-सबधी आदान-प्रदान अधिक साध्य और सुगम हो जाएगा। यह अच्छा लक्षण है कि मुक्तछद की ओर प्राय भारत की सभी भाषाओ की प्रवृत्ति हो रही है। गो मै यह नही मानता कि मुक्त छद मे सभी प्रकार के भावो-विचारो को आबद्ध करने की क्षमता होगी। इसपर विस्तार से मै अपने नवीन सग्रह 'बुद्ध और नाचघर' की भूमिका मे लिख चुका हूँ।

'कालेर कवले बाँगला' की भूमिका मे श्री विनय सरकार ने अपनी उदारता से मेरे और मूल रचना के विषय मे जो कहा उसके लिए मैने उनका आभार माना किन्तु इसमे मैने हिन्दी साहित्य का सम्मान ही देखा। मेरी रचना का बगाली सभ्य समाज के आगे आना एक विशेष कारणवश हुआ, जिसका सकेत मै ऊपर कर चुका हूँ। काव्य के आतरिक गुणो का ध्यान रखकर ही यदि अनुवाद किया जाता तो शायद 'बगाल का काल' का नबर बहुत पीछे आता।

अत मे मैं एक बात और कहना चाहूँगा। इस रचना पर मेरे कुछ मित्रो ने कहा था, शायद कथन की गभीरता को बिना समझे, कि तुमने बगालियो को खूब लताडा है, कुछ आलोचनाओ से भी मुझे यह ध्वनि

आई थी कि दुर्दिन मे बगालियो को सहानुभूति देने के बजाय लेखक ने उनका अपमान किया है। मैंने दाँतों तले अपनी जीभ दबाई थी। मैं जानता था कि मेरा आशय कदापि यह नही था, बल्कि मेरी धारणा तो यह थी कि उनके प्रति सहानुभूति दिखलाना और उनको दया का पात्र समझना उनका सबसे बडा अपमान है। कभी-कभी मैं सोचता था कि मेरा आशय भले ही ऐसा न रहा हो, पर सभव है काव्य की अक्षमता के कारण मेरे उद्बोधन से व्याजनिंदा की ध्वनि आती हो। अनुवाद से मैं डर भी रहा था कि कही बगाली जनता भी ऐसा न समझे। विनय सरकार की भूमिका के निम्नलिखित अश से मुझे यह जानकर बडी सात्वना मिली कि बगाली सभ्य समाज ने मुझे समझने में ग़लती नही की—

"अग्रेजी कवि बायरन परतत्र यूनान के दु ख से दु खी थे। उनकी सहानु-भूति से अग्रेज समाज की सहानुभूति यूनान के प्रति जागरित हुई थी। इतना ही नही, बायरन की रोमाटिक भावना से सारे अग्रेज नर-नारी उत्तेजित हो उठे थे। बायरन का यूनान-सबधी काव्य अग्रेज़ी साहित्य का एक विपुल स्तभ है।

"आज बच्चन बगाल के दु:ख से दु:खी हैं। इसमे कोई सदेह नही कि बगाली जनता हिन्दी साहित्य द्वारा अटूट श्रद्धा और सहानुभूति प्राप्त कर सकेगी। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य मे ज्वार उठ आया है। बग-प्रेम, बग-सेवा, बग-प्रचार बच्चन का एकमात्र लक्ष्य है। जो बायरन के लिए यूनान था, वही बच्चन के लिए बगाल है। हिन्दी साहित्य की जय!"

बगाल का अकाल इतिहास की वस्तु हो गया है, पर जनता की परीक्षा कभी समाप्त नही होती। दुर्बलता, निर्जीवता, नपुसकता और आत्महत्या से साहस, वीरत्व, पुरुषत्व और आत्मबलिदान सदा अच्छे

समझे जाएँगे। जो गुण समाज के लिए श्रेय है वे व्यक्ति के लिए भी होगे। कविता का अतिम प्रभाव व्यक्ति अथवा समाज पर कुछ सस्कार छोड जाना है। सस्कार बनानेवाले उपाय कष्टकर ही होते है। यह कविता का ही काम है कि आपको आनद भी दे और आपके सस्कार भी बनाए। यह कविता के लिए ही शक्य है कि दुखद से दुखद परिस्थितियो से भी आनद का रस खीच ले।

'बगाल का काल' मे कितना रस है, कितनी सस्कार बनाने की क्षमता, इसका निर्णय आप दे।

नई दिल्ली
१७-७-५८

—बच्चन

मानव होने का सारा सम्मान विसार
घूमती गाँव-गाँव,
घूमती नगर-नगर,
बाज़ारों-हाटों में, दर-दर, द्वार-द्वार !

अरे, यह भूख हुई साकार,
दीर्घाकार !
तृप्त कर सकता इसको कौन ?
पेट भर सकता इसका कौन ?
भूख ही होती, लो, भोजन !
मृत्यु अपना मुख शत-योजन
खोलती,
खाती और चबाती,
मोद मनाती,
मग्न हो मृत्यु नृत्य करती !
नग्न हो मृत्यु नृत्य करती !
देती परम तुष्टि की ताल,
पड़ गया बंगाले में काल,

भरी कगालो से धरती,
भरी कंकालो से धरती !

क्या कहा ?
कहाँ पड गया काल,
कहाँ कंगाल,
कहाँ ककाल,
क्या कहा, कालत्रस्त बगाल !

वही बगाल—
जिसपर छाए सजल घनों की
छाया में लह-लह लहराते
खेत धान के दूर-दूर तक,
जहाँ कही भी गति नयनो की।

जिसपर फैले नदी-सरोवर,
नद-नाले वर,
निर्मल निर्झर

सिंचित करते वसुन्धरा का
आँगन उर्वर ।

जिसमे उगते-बढते तरुवर,
लदे दलो से,
फँदे फलो से,
सजे कली-कुसुमो से सुन्दर ।

वही बंगाल—
देख जिसे पुलकित नेत्रो से
भरे कंठ से,
गद्गद स्वर से
कवि ने गाया राष्ट्रगान वह—
वंदे मातरम्,
सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम्,
शस्य श्यामलाम्, मातरम् ।

वंदे मातरम्—

जो नगपति के उच्च शिखर से
रासकुमारी के पदनख तक,
गिरि-गह्वर मे,
वन प्रातर में,
मरुस्थलो मे, मैदानो मे,
खेतो मे औ' खलिहानो मे,
गाव-गाव मे,
नगर-नगर मे,
डगर-डगर मे,
बाहर घर मे
स्वतन्त्रता का महामत्र बन
कठ-कठ से हुआ निनादित,
कठ-कंठ से हुआ प्रतिध्वनित ।

जपकर जिसको आज़ादी के दीवानो ने
कितने ही
दी मिला जवानी
मिट्टी मे, काले पानी मे ।

कितनो ने हथकडी-बेडियो की झन-झन पर
जिसको गाया,
और सुनाया,
मन बहलाया,
जबकि डाल वे दिए गए थे
देशप्रेम का मूल्य चुकाने
कठिन, कठोर, घोर कारागारो मे ।

कितने ही जिसको जिह्वा पर लाकर
बिना हिचक के,
बिना झिझक के,
हँसते-हँसते
झूल गए फाँसीवाले तख्ते पर,
या खोल छातियाँ खडे हुए
गोली की बौछारो मे

वही बगाल—
जिसकी एक साँस ने भर दी

मरे देश मे जान,

आत्मसम्मान,

आज़ादी की आन,

आज,

काल की गति भी कैसी, हाय,

स्वयं असहाय,

स्वय निरुपाय,

स्वय निष्प्राण,

मृत्यु के मुख का होकर ग्रास,

गिन रहा है जीवन की साँस-साँस

हे कवि, तेरे अमर गान की

सुजला, सुफला,

मलय गधिता,

शस्य श्यामला,

फुल्ल कुसुमिता,

द्रुम सुसज्जिता,

चिर सुहासिनी,

मधुर भाषिणी,
धरती भरणी,
जगत वंदिता
बंग भूमि अब नहीं रही वह

बंग भूमि अब
शस्यहीन है,
दीन क्षीण है,
चिर मलीन है,
भरणी आज हो गई हरणी,
जल दे, फल दे और अन्न दे
जो करती थी जीवनदान,
मरघट-सा अब रूप बनाकर,
अजगर-सा अब मुँह फैलाकर
खा लेती अपनी संतान!
बच्चे और बच्चियाँ खाती,
लड़के और लड़कियाँ खाती,
खाती युवक, युवतियाँ खाती,

खाती बूढे और जवान,
निर्ममता से एक समान,
वग भूमि वन गई राक्षसी—
कहते ही लो कटी ज़बान

राम-रमा !
क्षमा-क्षमा !
माता को राक्षसी कह गया !
पाप शात हो,
दूर भ्राति हो।
ठीक, अन्नपूर्णा के आचल
मे है सर्वस,
अन्न तथा रस,
पडा न सूखा,
वाढ़ न आई
और नही आया टिड्डी दल,
किंतु वग है भूखा, भूखा, भूखा !
माता के आंचल की निधियाँ

अरे लूटकर कौन ले गया ?

हाथ न बढ तू,
ठहर लेखनी,
अगर चलेगी, झूठ कहेगी ।
हाथो पर हथकडी पडी है,
सच कहने की सजा बडी है,
पडे जबानो पर है ताले,
नही जबानो पर, मु ह पर भी ,
पडे हुए प्राणो के लाले—
बरस-बरस के पोसे-पाले
भूख-भूख कर,
सूख-सूखकर,
दारुण दुख सह,
लेकिन चुप रह,
जाते है मर,
जाते है झर
जैसे पत्ते किसी वृक्ष के

पीले, ढीले
झंझा के चलने पर !
कृमि-कीटों की मृत्यु किस तरह
होती इससे बदतर !

बोल विश्व विख्यात मेदिनी,
बोल विश्व इतिहास शोभिनी,
बोल बंग की पुण्य मेदिनी,
बोल बंग की पूत मेदिनी,
बोल विभा की चिर प्रसूतिनी,
बोल अमृत पुत्रों की जननी—

जननी श्री गोविंद गीत के
तन्मय गायक,
रसिक विनायक,
कवि नृप श्री जयदेव भक्त की;
बंगला वाणी
जीवन दानी,

कवि-कुल-कोकिल चंडिदास की,
औ' पद्मापति पद अनुरागी,
गृह परित्यागी,
परम विरागी
श्री चैतन्य देव की जिनकी
भक्ति-ज्वाल में
विगलित होकर
हृदय बंग का कभी ढला था।

बोल अमर पुत्रों की जननी—
जननी श्री विद्यासागर की,
राष्ट्र गीत विरची बंकिम की
मेघनाद-वध महाकाव्य के
प्रखर प्रणेता मधुसूदन की,
मानवता के वर विज्ञानी
शरच्चंद्र की,
विश्ववंद्य कवि श्री रवींद्र की,
पिकी हिंद की सरोजिनी की,

तोरुदत्त औ' श्री द्विजेंद्र की
और अग्निवीणा के वादक
कवि काज़ी नज़रुलिस्लाम की।

बोल अजर पुत्रों की जननी—
जननी, भावी के वर द्रष्टा
राजा, मोहन राय सुधी की,
रामकृष्ण-से परम यती की,
योगीश्वर अरविंद ज्ञानरत
और विवेकानंद व्रती की,
देश प्रेम के प्रथमोन्मेषक
'लाल' 'बाल' के बंधु 'पाल' औ'
विद्यावाचस्पति सुरेंद्र की,
जिसका नाम वीर अर्जुन की
अमर प्रतिज्ञा
'न पलायन' की
आंग्ल प्रतिध्वनि
बनकर हृदय-हृदय में गूंजी—

सुरेंदर नाथ,
सरेंडर नाट[1] !
जननी ऐसे नाम धनी की
औ' उनके समकक्षी-से ही
वाग्मि घोष की,
देशबंधु श्री चितरंजन की,
आशुतोष की,
श्री सुबोस की !

बोल अभय पुत्रों की जननी—
परदेशी के प्रथम विरोधी,
परदेशी को प्रथम चुनौती
देनेवाले,
उससे लोहा लेनेवाले
'कासिम और सिराज वीर की,
और क्रांति के अग्रदूत

१ Surrender Not—हार न मानो—'न पलायन'।

उस क्षुधीराम की,
जिसने अपनी वय किशोर मे
ही यह सिद्ध किया था अब भी
बुझी राख मे आग छिपी है;
उसी आग की चिनगारी-से,

परम साहसी,
बब प्रहारी,
रास बिहारी की, जो अब भी
ऐसा सुनने में आता है,
अन्य देश मे
छद्म वेप मे घूम-घूमकर
अलख जगाता है हुब्बुल वतनी का।
और शहीद यतींद्र वीर की,
जिसने बदीघर के अंदर
पल-पल गल-गल,
पल-पल घुल-घुल,
तिल-तिल मिट-मिट,
एकसठ दिन तक

अनशन व्रत रख,
प्राण त्यागकर
यह बतलाया था हो बंदी देह
मगर आत्मा स्वतंत्र है !

बोल अमर पुत्रों की जननी,
बोल अजर पुत्रों की जननी,
बोल अभय पुत्रों की जननी,
बोल बंग की वीर मेदिनी,
अब वह तेरा मान कहां है,
अब वह तेरी शान कहां है,
जीने का अरमान कहां है,
मरने का अभिमान कहां है !

बोल बंग की वीर मेदिनी,
अब वह तेरा क्रोध कहां है,
तेरा विगत विरोध कहां है,
अनयों का अवरोध कहां है,

भूलो का परिशोध कहा है !

बोल वंग की वीर मेदिनी,
अब वह तेरी आग कहा है,
आज़ादी का राग कहा है,
लगन कहा है, लाग कहा है !

बोल वंग की वीर मेदिनी,
अब तेरे सिरताज कहा हैं,
अब तेरे जाबाज़ कहा है,
अब तेरी आवाज़ कहा है !

बकिम ने गर्वोन्नत ग्रीवा
उठा विश्व से
था यह पूछा,
'के बोले मा, तुमि अबले ?'

मैं कहता हू,

तू अबला ।
तू होती, मा,
अगर न निर्बल,
अगर न दुर्बल,
तो तेरे यह लक्ष्य-लक्ष्य सुत
वचित रहकर उसी अन्न से,
उसी धान्य से
जिसपर है अधिकार इन्हीका,
क्योकि इन्होने अपने श्रम से
जोता बोया,
इसे उगाया,
सीच स्वेद से
इसे बढाया,
काटा, माडा, ढोया,
भूख-भूख कर,
सूख-सूखकर,
पजर-पजर,
गिर धरती पर

'निर्बल के बलराम !'
(हाय किसी ने क्यों न सुझाया
निर्बल के बल राम नहीं,
निर्बल के बल हैं दो घूंसे !)

जब न राम टस से मस होते,
नहीं बरसते तुम पर रोटी,
सुरुआ-बोटी,
तुम हो अपना भाग्य कोसते,
मन मसोसते,
यही बदा था,
यही लिखा था,
'होइहि सोइ जो राम रचि राखा,
को करि तरक बढावइ साखा—'
अंतिम सांसो से रट-रटकर
तुम जाते मर,
लेकिन जीवित भी रहने पर
कब तुम थे मुरदो से बेहतर !

पशु को भी आता है अपने
अधिकारो पर लडना-मरना,
जो कि आज तुम भूल गए हो,
भूखे बग देश के वासी !

छाई है मुरदनी मुखो पर,
आखो मे है धसी उदासी,
विपद्ग्रस्त हो,
क्षुधात्रस्त हो,
चारो ओर भटकते फिरते,
लस्त-पस्त हो
ऊपर को तुम हाथ उठाते,
और मनाते
'बरसो राम पटापट रोटी ।'
क्योकि सिखाया,
क्योकि पढाया,
क्योकि रटाया,
तुम्हे गया है—

'निर्बल के बलराम !'
(हाय किसी ने क्यों न सुझाया
निर्बल के बल राम नही,
निर्बल के बल हैं दो घूसे !)

जब न राम टस से मस होते,
नही बरसते तुम पर रोटी,
सुरुआ-बोटी,
तुम हो अपना भाग्य कोसते,
मन मसोसते,
यही बदा था,
यही लिखा था,
'होइहि सोइ जो राम रचि राखा,
को करि तरक बढावइ साखा—'
अंतिम सासों से रट-रटकर
तुम जाते मर,
लेकिन जीवित भी रहने पर
कब तुम थे मुरदो से बेहतर !

पच्छिम की है एक कहावत,
इसको सीखो,
इसको घोखो,
'गॉड हेल्प्स दोज
    हू हेल्प देमसेल्व्ज'—
'राम सहायक उनके होते
    जो अपने है स्वय सहायक'।
 वं जन्म के
धर्म-कर्म मे,
भाग्य-मर्म मे
इस जीवन का अर्थ न खोजो।
यही कायरो के शरणस्थल,
यही छिपा करते है निर्बल,
यही आड लेते है असफल।

मुझसे सुन लो,
नही स्वर्ग से अन्न गिरेगा,
नही गिरेगी नभ से रोटी,

किंतु समझ लो,
इस दुनिया की प्रति रोटी मे,
इस दुनिया के हर दाने में
एक तुम्हारा भाग लगा है,
एक तुम्हारा निश्चित हिस्सा;
उसे बटाने,
उसको लेने,
उसे छीनने,
औ' अपनाने
को जो कुछ भी तुम करते हो,
सब कुछ जायज़,
सब कुछ रायज ।

अपना सारा हिस्सा खोकर
तुम बैठे हो निश्चल होकर,
कैसे कायर !
उठो भाग अब अपना मांगो,
बग देश के भूखो जागो !

घोपित कर दो दिक्-दिगत मे
भूख नही है भीख चाहती,
भूख नही है भीख माँगती,
भीख माँगते केवल कादर,
केवल काहिल,
केवल बुजदिल,
भूख बली है,
भूख चली है
अब अपने प्रति न्याय माँगने,
अब अपना अधिकार माँगने,
और न दो तो रार माँगने ।

कम पर मत सतोष करो तुम,
होश करो तुम,
कर सतोष कहाँ तुम पहुँचे,
हटते-हटते,
कटते-कटते,
घटते-घटते,

वहाँ जहाँ सतोष मरण है ।

सतो ने सतोष सिखाया ?
इसी नतीजे पर पहुँचाया ।
है तुमको तो
मैं कहता हू,
सत तुम्हारे महा लठ थे,
पर चालाक तुम्हारे शासक,
पर चालाक तुम्हारे शोषक,
जो दे लबे-चौडे चदे,
करा कीर्तन,
कहा हरिभजन,
इन सतो की सरस बानियाँ
है तुम पर सरसाते रहते,
है तुम पर बरसाते रहते,
शात रहो तुम,
भ्रात रहो तुम
और तुम्हारी आग न जागे,

असतोप का राग न जागे
और तुम्हारे मुँह के अदर
अटका रहे राम का रोडा,
जिससे मुख से शब्द क्राति का निकल न पाए ।

नए जगत मे आँखे खोलो,
नए जगत की चाले देखो,
नही बुद्धि से कुछ समझा तो
ठोकर खाकर तो कुछ सीखो,
और भुलाओ पाठ पुराने ।

मन से अब सतोष हटाओ,
असतोप का नाद उठाओ,
करो क्राति का नारा ऊँचा,
भूखो, अपनी भूख बढाओ,
और भूख की ताकत समझो,
हिम्मत समझो,
जुर्रत समझो,

कूवत समझो;
देखो कौन तुम्हारे आगे
नही झुका देता सिर अपना ।

याद मुझे हो आई सहसा
एक पते की बात पुरानी,
हुए दस बरस,
जापानी कवि योन न ची
भारत मे था,
देख देश की अकर्मण्यता
उसने यह आदेश किया था—
यू हैव टु गिव योर पीपुल
        दि सेंस ऑफ़ हगर'—
'अपने देशवासियों को है तुम्हे बताना
अर्थ भूख का ।'

जबकि पढा था
खूब हँसा था,

जहाँ करोडो दिन भर मर-खप
आधा पेट नही भर पाते,
एक बार भी जो जीवन मे
नही अघाते,
और जहाँ का नेता-नेता
नही भूलता है दुहराना
देता भाषण,
स्टारविंग मिलियन—
भूखे अनगिन,
वहाँ सुनाना,
'अपने देशवासियो को हे तुम्हे बताना
अर्थ भूख का,'
कितना उपहासास्पद, सच है,
कवि ही ठहरे,
जल्प दिया जो जी मे आया ।

बीत गए दस बरस देश के,
पडा काल बगाल भूमि पर

और पढा पत्रो मे मैने
कैसे भूखो के दल के दल
गहना-गुरिया, बर्तन-भाँडा,
गैया-गोरू, बैल-बछेरू,
बोरी-बँधना, कपड़ा-लत्ता,
ज़र-ज़मीन सब बेच-बाचकर,
पुश्तैनी घर-बार छोड़कर
चले आ रहे है कलकत्ता।

कैसे भूखो के दल के दल
दर-दर मारे-मारे फिरते,
दाने-दाने को बिललाते,
ग्रास-ग्रास के लिए तरसते,
कौर-कौर के लिए तडपते
मौत मर रहे है कुत्तों की,
अरे नही,
कुत्ता भी मरता नही इस तरह;
मौत मर रहे है कीड़ो की,

या इनसे भी निम्न कोटि की।
(उफ, मनुष्य के महापतन की
बनी न सीमा !)

और सुना जब मैने यह भी,
भूखे देखे गए छीनकर
बच्चो से निज रोटी खाते,
या कि बेचते उनको हाटो
मे कुछ ताँबे के टुकडो पर,
जिससे दो दिन और जिएँ वे
पशु का जीवन,
और फिरे फिर
घूरो पर,
कूडाखानो पर,
और अधिक गदी जगहो पर
उठा दाँत से लेने को यदि
कोई दाना वहाँ पडा हो—
मानवता को निंदित करते,

लज्जित करते,
मानव को मानव सज्ञा से
वचित करते.....

तब मैने यह कहा कि हमने
अर्थ भूख का अभी न जाना,
हमे भूख का अर्थ बताना,
भूखो, इसको आज समझ लो,
मरने का यह नही बहाना !

फिर से जीवित,
फिर से जाग्रत,
फिर से उन्नत
होने का है भूख निमंत्रण,
है आवाहन ।

भूख नही दुर्बल, निर्बल है,
भूख सबल है,

भूख प्रबल है,
भूख अटल है,
भूख कालिका है, काली है,
या काली सर्वभूतेषु
क्षुधारूपेण सस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमो नमः ।

भूख प्रचड शक्तिशाली है,
या चडी सर्वभूतेषु
क्षुधारूपेण सस्थिता
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमो नमः ।

भूख अखड शौर्यशाली है,
या देवी सर्वभूतेषु
क्षुधारूपेण सस्थिता
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमो नमः ।

भूख भवानी भयावनी है,
अगणित पद, मुख, कर वाली है,
वडे विशाल उदरवाली है।
भूख घरा पर जब चलती है,
वह डगमग-डगमग हिलती है।
वह अन्याय चवा जाती है,
अन्यायी को खा जाती है,
और निगल जाती है पल में
आततायियों का दुःशासन,
हडप चुकी अब तक कितने ही
अत्याचारी सम्राटो के
छत्र, किरीट, दड, सिहासन !

नही यकीन तुम्हे आता है ?
नही सुनाई तुम्हे किसीने
कभी फ्रास की क्राति अभी तक ?
भूखों ने की क्रांति वहाँ थी।

तुम भूखे हो मरनेवाले,
हाथ हाथ पर धरनेवाले,
वे भूखे थे जीनेवाले,
हाथ उठा कुछ करनेवाले
साहस वाले, सीनेवाले ।

बीते बरस एक सौ चौवन,
यह विप्लव विस्फोटक फूटा
फ्रास देश मे,
जो अनियन्त्रित राजशक्ति का
अटल केद्र था,
अडिग दुर्ग था ।

राजा निज वैभव विलास की
सामग्री सचित करने मे,
रम्य महल औ' भव्य भवन के
निर्मित औ' सज्जित करने मे,
और महत्त्वाकाक्षा प्रेरित

समर योजनाओं के ऊपर
बहा रहा था धन ऐसे जैसे हो पानी !

और फ़ास की प्रजा बिचारी,
प्रजा दुखारी,
दुर्दिन मारी,
यह कर भारी
अदा कर रही थी अपने जीवन के रक्त कणों से !

सहने की सीमा आ पहुँची,
बहुत प्रजा ने राजा को समझाना चाहा,
अपना कष्ट बताना चाहा,
पर अभिमानी
करता चला गया मनमानी !

पुरुप निवासी थे पेरिस के,
नही वहाँ रहते थे हिजड़े,
नही वहाँ बसते थे ज़नखे

जो सारे अत्याचारो को
या अमानुषिक व्यवहारो को
शीश झुकाकर सह लेते है।

क्रोधानल से,
महा प्रबल से
धधक उठी छाती पेरिस की,
एक लपट मे राख हो गया
बास्तील का किला पुराना,
जो प्रतीक बन खडा हुआ था
राजा की सत्ता-प्रभुता का।

और दगी यह आग देश के
हर कोने मे,
हर गोशे मे,
उथल-पुथल मच गई फ्रास मे,
घोर अराजकता ने अपना पाव पसारा,
बिखरा शीराजा समाज का,

हरे, घने उद्यान बडे थे ।
झलक रहा था जहाँ-तहाँ पर
झीलो का नीलम-सा पानी,
करते थे सगीत मनोरम
जिधर-तिधर झरने सैलानी ।
शीतल, मद, सुगधित सारी
चिताग्रो को हरनेवाला
पवन सदा उसपर वहता था,
मानो वह कहता रहता था—
नही यहाँ कोई ग्राएगा
भग शाति को करने वाला ।
(कितना था ग्रज्ञान यहाँ पर
कल होनेवाले ऊधम से !)

जब पेरिस भूखो मरता था
वृद्ध पिता-माता फैलाए
हाथ पुत्र से यह कहते थे,
'वेटा भूख लगी है, रोटी !'

व्हिस्की, ब्रैंडी, शैम्पेन की
बोतल की बोतल के मुँह से
काग उड रहे थे पल-पल पर ।

जब पेरिस भूखो मरता था,
बच्चे माओ के आँचल को
थाम दृगो मे आँसू भर-भर,
मचल-मचल, रोते-चिल्लाते
थे कहते, 'मा भूख लगी है,
रोटी लाओ, रोटी लाओ !'
तब वरसाई के शातू मे
रग-बिरगी वर्दी पहने
चतुर बजनिए झूम-झूमकर
बैंड गहागह बजा रहे थे,
और बिगुल की धुतू-धकर के
झडो की हर-हर, फर-फर के
बीच अतनत[1] गर्वित-ग्रीवा

[1] Marie Antoinette—फ्रास के राजा लुई सोलहवें की पत्नी ।

बच्चो से लेकर बूढे तक
क्षीण हो रहे थे दिन-प्रतिदिन,
तब मेजो की जूठन खाकर,
खूब अघाकर
मोटा रहे थे वरसाई के कुत्ते-कुत्ते ।

एक सबेरे
बेटे ने भूखी मा देखी ।
पति ने भूखी पत्नी देखी ।
मा ने देखे भूखे बच्चे ।
और एक निश्चय से सारा
पेरिस पल मे एक हो गया ।

सडक-सडक से, हाट-हाट से,
गली-गली से, बाट-बाट से,
घर-घर से औ' घाट-घाट से,
दर-दर से औ' दूकानो से,
दफ्तर से औ' दीवानो से,

एलो-एलो, एलो-एलो !
साथ बढो औ' साथ रहो,
जो कुछ कहना साथ कहो,
जो कुछ करना साथ करो,
जो कुछ बीते साथ सहो,
साथ जिओ सब, साथ मरो !
एलो-एलो, एलो-एलो !

जो जिसके हथियार लग गया
हाथ वही वह लेकर निकला,
कोई ले बंदूक पुरानी,
कोई ले तलवार दुधारी,
कोई बल्लम, कोई फरसा,
कोई बरछी, कोई बरछा,
कोई भाला, कोई नेजा,
कोई सीधा, कोई तिरछा,
कोई छूरी और कटारी,
कोई छूरा और भुजाली,

कोई कुल्हरी और कुदाली,
कोई आरा, कोई आरी,
जिनको कुछ न मिला पेड़ो की
शाख लिए हाथो मे निकले,
टेढी-मेढी, भद्दी, भारी
या पत्थर ईटे नोकीले !

एक सवेरे
फटे-पुराने कपडे पहने,
बाल बिखेरे,
बालक, वृद्ध, युवा, नर, नारी
कितने, इनको कौन गिने रे,
क्षीणकाय पर दृढ सकल्पी,
सज बेढगे हथियारो से,
सज बेडौले औज़ारो से,
आसमान मे उन्हे उठाते,
उन्हे घुमाते औ' उछालते
हुए इकट्ठा,

ठट्टिम ठट्टा,
पेरिस के उस राजमार्ग पर
जो वरसाई को जाता था ।

ग्रौर बढे फिर उसी ग्रोर को
भरे जोश मे,
भरे रोष मे,
जैसे सावन की बरसाती
नदी बाढ पर, जल-मदमाती,
हिल्लोलित, कल्लोलित होती,
ग्रौर ढहाती कूल किनारे,
ग्रौर बहाती तट वृक्षो को,
बढा पाट-सी चौडी छाती
चली जा रही हो ग्रबाध गति
ग्रबुधि से मिलने को ।

कौन रोकता उसका वेग,
कौन रोकता उसका नाद ?

इन्कलाव ज़िंदाबाद !
सब मनुष्य हैं एक समान,
इन्कलाव ज़िंदाबाद !
एक विधाता की संतान,
इन्कलाव ज़िंदाबाद !
सब आज़ादी के हकदार,
इन्क़लाब ज़िंदाबाद !
स्वतंत्रता के दावेदार,
इन्कलाब ज़िंदाबाद !
नहीं किसीको है अधिकार,
इन्कलाव ज़िंदाबाद !
करे किसीपर अत्याचार,
इन्कलाब ज़िंदाबाद !—

इस निनाद से,
इस जिहाद से
थर-थर कॉप उठी बरसाई,
इस प्रकार से जैसे कोई]

छुईमुई की मृदु लतिका-सी,
अक्षतयोनि अबोध कुमारी
देख बलिष्ठ किसी पट्ठे को
हट्टे-कट्टे,
जिसके ताकतवाले गट्टे,
जो कामातुर
होकर निर्भय, होकर निष्ठुर
बलात्कार करने को उसकी
ओर बढा आता हो।

भूखो के दल का वरसाई
मे घुसना था, गजब हो गया !
बिगडे साँड धँस पडे मानो
शीशे-चीनी के बर्तन के बाजारो मे।
क्या-क्या टूटा,
क्या-क्या फूटा,
और गया किस-किसको लूटा ?
सब कुछ टूटा,

सब कुछ फूटा,
और गया सारा कुछ लूटा ।

'आखिर क्या तुम चाह रहे हो,
आखिर क्या है माँग तुम्हारी ?'
'ब्रेड ऐंड स्पीच विद द किंग,
ब्रेड ऐंड नाट टू मच टाकिंग'[1]—
'बस दो बातें मोटी-मोटी
अपना राजा, अपनी रोटी !'

हू-हा करते,
शोर मचाते,
औ' गौगा से गगन गुँजाते,
कटु कर्कश स्वर से चिल्लाते,
लोग चले आते है कहते,
हाथ उठाते,

---

१. अर्थ है, रोटी और राजा से साक्षात्कार ; रोटी, बिना किसी बात और बहस के।—कार्लाइल के फ्रेंच रेवोल्यूशन से उद्धृत ।

'करेज फरेंड्स !
वी शैल नाट वाट ब्रेड नाऊ,
वी श्रार ब्रिंगिग यू द बेकर,
द बेकरेस ऐंड बेकर्स ब्वाय[1]'—
'श्रब निराश मत हो, हे मित्रो,
रोटी की श्रब कमी न होगी
देखो श्राज पकडकर हम सब
बावर्ची, बावर्चिन लाए,
बावर्ची का बेटा,
हमे बना श्रब देंगे रोटी
श्रौर भरेंगे पेटा,
भाई खूब भरेंगे पेटा'—

विश्व विजयिनी भूख भवानी
का है यह लश्कर लासानी,

---

१ अर्थ है, दोस्तो डटे रहो, अब हमें रोटी की कमी न रहेगी। देखते नहीं हम तुम्हारे लिए बावर्ची, बावर्चिन और उनका बेटा लेकर आ रहे हैं (तात्पर्य है राजा रानी और राजकुमार से)। —कार्लाइल के फ्रेंच रेवोल्यूशन से उद्धृत।

जो अब पेरिस को आता है,
राजशक्ति पर फतहयाब हो ।
राजा-रानी,
मंत्री मानी,
सरक्षक सेना, सेनानी,
औ' अमीर-उमरा अभिमानी
होकर श्रीहत,
हो नतमस्तक,
चुप्पी साधे
और बगल मे मुट्ठी बाँधे,
घिरे हुए बलवाई दल से
चले आ रहे है पेरिस को
धीरे-धीरे-धीरे ।

ज्यादातर पैदलवाले है,
पर सवारियाँ
जो भी मिल पाई है उनपर
लोग ठसाठस बैठ गए है ।

आज विजय के पागलपन मे
उन्हे नही कुछ अता-पता है,
किसके नीचे, किसके ऊपर,
बाल बिखेरे, चिथडे पहने,
लिए हाथ मे लोहे की छड,
मर्द-औरते कूद-कूदकर
जा बैठी है
तोप गाडियो पर, तोपो पर ।

आसा-बल्लम,
फरसे-बरछे,
तेगे-नेजे,
फाले-भाले,
औ' बदूको की सगीने
उठी हवा मे उचक रही है,
खोसे हुए उनकी नोको के
ऊपर है रोटी के टुकडे,
मानो यह घोषित करती है—

हाथ दीनता से फैलाकर
नही भीख हम हैं ले आई,
किंतु वीरता से लडभिडकर
हमने अपनी रोटी पाई !

ऋषियो ने सत्य ही कहा—
वीरभोग्या वसुन्धरा।

ओ वगाल देश के भूखो !
एक नज़र तुम इनको देखो,
एक नज़र अपने को देखो,
इनके कधे से तुम अपना कंधा नापो,
इनके सीने से तुम अपना सीना नापो,
इनके बाज़ू से तुम अपने बाज़ू नापो !

अरे कहाँ ये, अरे कहाँ तुम,
कहाँ खडे ये, कहाँ पडे तुम,
कहाँ खडे ज़िन्दा दिल वाले,

कहाँ पडे बेदम के बूदम ।
कहाँ हथेली पर सिर रक्खे
हक पर लडनेवाले योद्धा,
कहाँ हथेली से सिर ढाँपे
पज़मुरदा माटी के धोधा ।

मिट्टी के पुतले ये भी है,
पर इनकी छाती के अदर
जोश और जज्बा के झझा
औ' तूफान किसीने फूँके,
और तुम्हारे अदर चलती
केवल उखडी-उखडी साँसे ।

काश कि मुझमे ताकत होती,
मै अपनी प्राणप्रद वाणी
पास तुम्हारे पहुँचा करके
जीवन, जागृति औ' उन्नति का
नव सदेश तुम्हे दे सकता ।

एक नबी की आवश्यकता

आशा वाले,

जादू वाली भाषा वाले,

जो आए औ' तुम्हे बताए,

दृढता से दिल में बैठाए—

तुम मनुष्य हो

औ' मनुष्य की तुममे सत्ता,

जो मनुष्य ने किया,

मनुष्य उसे कर सकता।

यदि इसपर विश्वास जमाओ,

तो हे बंग देश के वासी,

बदल जायगा भाग्य तुम्हारा,

काल तुम्हारा,

देश तुम्हारा,

वेश तुम्हारा

और तुम्हारे नए जन्म का नया सितारा

चमकेगा ऊँचा हो करके आसमान मे।

तुम अपने को पहचानो तो—
मनोवृत्तियो के परिवर्तन
मे कुछ देर नही लगती है—
आशा नही हिमालय ले कदर
के अदर छिपी हुई है,
औ' विश्वास नही बैठा है
हिद महासागर की तह मे,
धरो हाथ सीने पर देखो
दोनो धडक रहे है दिल मे,
दुनिया का कोई भी इजन
इससे बडा नही ताकत मे ।
इसे चला दो, फिर देखोगे,
ओ बगाल देश के वासी,
प्रबल शक्ति वाले सैनिक तुम,
धन-धरती से नाता तोडे,
और मृत्यु के निकट पहुँचकर
पुरजन-परिजन से तृण तोडे,
केवल सबसे बडा मोह प्राणो का

तुमको अब भी बाँधे,
इसे काट दो,
और बढो कर
छाती आगे, पीछे काँधे,
सुनते हुए निमंत्रण तुमको
भूख भवानी जो देती है—
भूख भवानी बंग देश की
या देवी बंगदेशेषु
क्षुधारूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमो नमः !
या दुर्गा बंगदेशेषु
दैन्यरूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै,
नमस्तस्यै, नमो नमः !
या काली बंगदेशेषु
कालरूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमो नमः !

घडी मुक्ति की,
घडी शक्ति की,
घडी पुण्य की
तब आएगी,
कोटि-कोटि तुम बग निवासी
एक साथ हो निकल पडोगे,
और एक स्वर से बोलोगे,
चलो-चलो हे चलो-चलो,
मिलो-मिलो हे मिलो-मिलो,
मिल-मिलकरके साथ चलो,
साथ चलो औ' साथ बढो,
साथ बढो औ' साथ रहो,
साथ रहो औ' साथ कहो,
साथ उठाओ एक निनाद,
साथ उठाकर अपने हाथ,
अपनी रोटी, अपना राज,
इन्कलाब जिदाबाद !
अपनी रोटी, अपना राज—

अन्न ब्रह्म है ।

नही अन्न से
आज ब्रह्म से वचित हो तुम,
नही अन्न से
आज धर्म से वचित हो तुम ।
नही अन्न से
आज कर्म से वचित हो तुम ।

उठो अन्न के लिए लडो तुम,
उठो धर्म के लिए लडो तुम,
उठो ब्रह्म के लिए लडो तुम,
ओ ऋषियो को अपना पूर्वज
कहनेवालो,
उठो आज अपनी सत्ता के
मूत केद्र की रक्षा के हित
निकल पडो तुम,
विकल बनो तुम ।

कढिल कढिलकर मौत पा चुके—
तो अपने को धन्यवाद दो,
क्योकि चील, कौओ, स्यारो के
भोजन के तुम योग्य हो सके।

सुनकर तुम दुर्भिक्ष निपीडित
आ द्रवित है सारा भारत,
जगह-जगह पर फड खुले है,
जगह-जगह चदा होता है,
कर मुशायरा, कवि-सम्मेलन,
नाटक, मँच, नुमाइश, नर्तन,
लोग इकट्ठा धन करते है,
और तुम्हे पहुँचाते रहते।

पर विश्वास अटल है मेरा,
कुछ न बनेगा इन चदो से,
कितने दिन इसको खाओगे ?
और जियोगे इसपर कब तक ?

मर जाने को जीवन पाते,
तुम्हे आत्म-सम्मान चाहिए !

तुम्हे जानना है मनुष्य तुम,
नही गुलाम देवताओ के,
और न उनके दया पात्र ही,
और न उनके ऊपर निर्भर,
तुम्हे आत्म-अवलब चाहिए !

तुम्हे जानना है मनुष्य तुम,
और मानवी अधिकारो पर
जबकि खडे होगे तुम डटकर
कोई शक्ति नही ऐसी जो
तुम्हे हटा दे तिल भर पीछे,
तुम्हे आत्म-विश्वास चाहिए !

तुम्हे जानना है मनुष्य तुम
जीवन मे जो कुछ भी जीने

के लायक है उसकी रक्षा
मे यदि प्राण गँवाना हो तो
नही हिचकना कभी उचित है,
लेकिन भिन्न आत्म-हत्या से
तुम्हे आत्म-बलिदान चाहिए !

और खरीदे कभी नही ये
जा सकते सोने-चाँदी से ।
मेरे पैसे या दो पैसे
किस मसरफ के तुमको होते,
इसीलिए यह अपनी वाणी
तुम्हे भेजता हूँ चदे मे,
सभव है तुमको कुछ बल दे,
और कालिका करे प्रेरणा,
निकल पडो तुम सहसा कहकर—
अपनी रोटी, अपना राज,
इन्कलाब ज़िदाबाद !